जनसत्ता

प्रतिबंध का रास्ता

पाकिस्तान के साथ रिश्ते मधुर बनाने के मकसद से भारत ने जो भी सहूलियत भरे कदम उठाए थे, पाकिस्तान उनका बेजा इस्तेमाल करता देखा गया है। नियंत्रण रेखा के पार से चलने वाले कारोबार में यही नजर आया है। राष्ट्रीय जांच एजंसी यानी एनआइए ने कुछ मामलों की जांच में पाया कि व्यापारी नियंत्रण रेखा के पार से होने वाले कारोबार का फायदा उठा कर अवैध हथियार, मादक पदार्थ, नकली नोट आदि भेजने में मशगूल हैं। इसके मद्देनजर भारत सरकार ने नियंत्रण रेखा के पार से होने वाले कारोबार को बंद करने का फैसला किया है। यह कारोबार वस्तु विनिमय प्रणाली पर आधारित था। यानी इधर से जो वस्तुएं उधर भेजी जाती थीं, उनके बदले उतनी ही कीमत की दूसरी वस्तुएं इधर आती थीं। यह सुविधा इसलिए उपलब्ध कराई गई थी कि कश्मीर वाले इलाकों के उत्पादकों, खासकर फल और मेवा उत्पादकों को सुविधा हो सके। पाकिस्तान में पैदा होने वाली बहुत सारी चीजों को इधर बाजार मिल सके। इसके पीछे एक मकसद यह भी था कि इस तरह दोनों तरफ के आम लोगों का आपस में मिलना-जुलना बना रहेगा और फिर दोनों देशों के बीच रिश्तों में कड़वाहट कुछ कम होगी।

यह कारोबार मुख्य रूप से जम्मू-कश्मीर में सलमाबाद और चक्कन दा बाग के रास्ते होता था। दोनों रास्तों को बंद कर दिया गया है। हालांकि नियंत्रण रेखा के पार से होने वाले कारोबार पर कड़ी नजर रखी जाती है, कड़ाई से जांच होती है कि कारोबारी कोई अनुचित सामान सीमा पार न पहुंचा सकें। पर भारी मात्रा में वस्तुओं के विनिमय के बीच आतंकी संगठनों से सांठगांठ रखने वाले कारोबारी कोई न कोई गली निकाल कर अनुचित वस्तुएं सीमा पार पहुंचा ही देते हैं। छिपी बात नहीं है कि पाकिस्तान में नकली भारतीय नोटों का धंधा बड़े पैमाने पर फल-फूल रहा है। इसी तरह तमाम कड़ी निगरानी के बावजूद चरमपंथियों के पास हथियारों और गोला-बारूद की पहुंच हो जाती है। नोटबंदी के बाद माना गया था कि आतंकी संगठनों की कमर टूट जाएगी, मगर नकली नोटों के कारोबार के जरिए वे अपनी वित्तीय ताकत बचाए रखने में कामयाब रहे। नोटबंदी के ठीक बाद जो आतंकी पकड़े गए, उनके पास से नकली भारतीय नोट भी बरामद हुए थे। इन सबको देखते हुए गहन जांच के बाद एनआइए ने पाया कि कुछ कश्मीरी नागरिक चोरी-छिपे पाकिस्तान चले गए। वहां वे चरमपंथी संगठनों से मिले और फिर फर्जी कंपनियां खोल कर नियंत्रण रेखा के पार से होने वाले कारोबार में मुब्तिला हो गए। वही इस तरह की अवैध गतिविधियां संचालित करते हैं।

वैसे भी पुलवामा हमले के बाद भारत ने पाकिस्तान को तरजीही राष्ट्र का दर्जा समाप्त कर दिया है। ऐसे में बिना कर चुकाए वस्तुओं की खरीद-बिक्री का सिलसिला बनाए रखने का कोई मतलब नहीं था। इस कारोबार पर पाबंदी लगने से भारतीय कारोबारियों को कोई खास नुकसान नहीं उठाना पड़ेगा। यहां फलों, सूखे मेवे आदि के लिए विशाल बाजार है। दिल्ली के रास्ते पूरी दुनिया में इनकी आपूर्ति के रास्ते खुले हुए हैं। पर परेशानी पाकिस्तानी कारोबारियों को उठानी पड़ेगी। नियंत्रण रेखा के रास्ते कारोबार की छूट होने से वहां के उत्पाद को भारत में एक सहज बड़ा बाजार उपलब्ध था। वह रुक जाने से पाकिस्तान सरकार पर एक अलग तरह का दबाव बनेगा। जाहिर है, इससे चरमपंथी संगठनों की कमर भी टूटेगी, क्योंकि उनके साजो-सामान और वित्तीय मदद का रास्ता भी इससे बंद हो गया है।

संकट और समाधान

पिछले कई दिनों से ऐसे संकेत तो मिल ही रहे थे कि जेट एअरवेज अब बंद होने के कगार पर है। हालांकि आधिकारिक रूप से कंपनी अभी बंद नहीं हुई है, लेकिन जिस तरह से दो दिन पहले विमान परिचालन पूरी तरह बंद कर दिया गया, उससे स्पष्ट तस्वीर सामने आ गई। हैरानी की बात तो यह है कि आज जेट एअरवेज जिस संकट में फंस चुकी है, उसका समाधान किसी को नजर नहीं आ रहा। सरकार के पास समस्या का कोई हल नहीं है, नागरिक उड्डयन महानिदेशालय (डीजीसीए) कुछ कर नहीं पा रहा। प्रधानमंत्री कार्यालय तक इस मुद्दे पर बैठक बुला चुका है, लेकिन हल कुछ नहीं निकला। कंपनी प्रबंधन की लाचारी पहले ही जगजाहिर हो चुकी है। और बची-खुची उम्मीदें तब और खत्म हो गईं जब उन लोगों ने भी हाथ खींच लिए, जिन्होंने मदद की थोड़ी आस जगाई थी। पिछले हफ्ते ऐसे संकेत आए थे कि जेट एअरवेज को बचाने के लिए भारतीय स्टेट बैंक के नेतृत्व में बैंकों का समूह आगे आ सकता है। लेकिन बैंकों ने भी झटका दे दिया। इसके बाद ही कंपनी ने विमान परिचालन बंद कर दिया। जाहिर है, बैंकों ने हालात को भांप कर ही मदद नहीं देने का फैसला किया होगा। बैंक पहले ही विजय माल्या की कंपनी किंगफिशर के मामले में हाथ जलाए बैठे हैं।

जेट एअरवेज का इस तरह भट्ठा बैठना वाकई गंभीर चिंता का विषय है। यह देश में विमानन क्षेत्र की कंपनियों को संचालित करने वाले नियामक को कठघरे में खड़ा करता है। डीजीसीए, नागरिक उड्डयन मंत्रालय, कंपनी को उधार देने वाले बैंक, उसके भागीदार और सबसे बड़ा कंपनी का खुद का प्रबंधन, सब मिल कर ही ऐसी परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार हैं। सवाल है कि अगर विमानन क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी बनाने व अच्छी सेवाएं देने के लिए निजी क्षेत्र की कंपनियों को बढ़ावा दिए जाने की नीति है तो फिर विमानन कंपनियां घाटे में क्यों चली जाती हैं और क्यों बंद हो जाती हैं। क्या इस पर निगरानी के लिए कोई तंत्र नहीं होना चाहिए? अक्तूबर 2012 में किंगफिशर बंद हुई थी, फिर जुलाई 2016 में पेगॉसस बंद हुई, फरवरी 2017 में एअर कोस्टा बंद हो गई, इसके दो महीने बाद ही एअर कार्निवल पर ताले लग गए, पिछले साल जुलाई में जूम एअर की दुकान सिमट गई। पिछले चार साल पर नजर डालें तो हर साल एक विमानन कंपनी बंद होती गई। ये हालात बता रहे हैं कि भारत में विमानन उद्योग के लिए हालात अच्छे नहीं हैं। आखिर इसके लिए किसको जिम्मेदार ठहराया जाए?

साल भर पहले तक देश की नंबर-एक विमानन कंपनी का तमगा लिए जेट एअरवेज का संकट पिछले साल अगस्त में सामने आया था। संकट उजागर तब हुआ जब कंपनी अपने अस्सी फीसद से ज्यादा कर्मचारियों को उस महीने का वेतन नहीं दे पाई थी। ऐसे में जरूरत थी कि कंपनी प्रबंधन और उड्डयन मंत्रालय तत्काल बैठक करके कोई समाधान निकलते। तब आज जैसे हालात से बचा जा सकता था। आज कंपनी के बीस हजार से ज्यादा कर्मचारियों की नौकरी खतरे में है। बैंकों के आठ हजार करोड़ से ज्यादा के कर्ज के अलावा जेट को लीज पर लिए विमानों और यात्रियों को रिफंड का पैसा लौटाना है जो साढ़े तीन हजार करोड़ से ज्यादा बैठता है। ऐसे में अब जो भी जेट को खरीदेगा, उसके सामने गंभीर चुनौतियां होंगी। दस मई को पता चलेगा कि कंपनी का उद्धार करने की हिम्मत कौन जुटाता है। किंगफिशर सहित दूसरी बंद हो चुकी कंपनियां और अब जेट के हालात हमारी बीमार विमानन नीति को दुरुस्त की जरूरत रेखांकित कर रहे हैं।

कल्पमेधा

यदि तुम प्रतिभावान हो तो राह के पत्थरों को सीढ़ियां बना लोगे, उन्हें रुकावट मानने का कोई कारण नहीं है। और बुद्धिमत्ता की सारी कला ही यही है अवरोधों को सीढ़ियां बना लेना।

-ओशो

चंदे की पारदर्शिता का सवाल

अरविंद कुमार सिंह

बजट में कड़े प्रावधान लाए जाने के बाद माना जा रहा था कि राजनीतिक दलों के लिए चुनावी चंदे के स्रोत को छिपाना आसान नहीं होगा। चुनाव सुधार की दिशा में यह एक बड़ी और कारगर पहल थी, इससे लोगों की उम्मीद बढ़ी थी। लेकिन यह उम्मीद फलीभूत होती दिख नहीं रही है।

सर्वोच्च अदालत ने देश के सभी राजनीतिक दलों से कहा है कि वे चुनावी बांड के जरिए मिले चंदे और दानकर्ता का ब्योरा सीलबंद लिफाफे में चुनाव आयोग को सौंपें। साथ ही यह भी कहा है कि राजनीतिक दल वित्त मंत्रालय द्वारा तय तारीख के मुताबिक चुनावी बांड से जो चंदा प्राप्त करने वाले हैं, उसका ब्योरा भी 30 मई तक चुनाव आयोग को उपलब्ध कराएं। हालांकि सर्वोच्च अदालत ने चुनावी बांड पर अंतरिम रोक नहीं लगाई गई है, लेकिन उसके भविष्य पर सवाल जरूर उठ खड़ा हुआ है। जानना आवश्यक है कि सर्वोच्च अदालत ने यह आदेश चुनावी बांड योजना पर रोक लगाने की मांग संबंधी गैर सरकारी संगठन- एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफार्म्स (एडीआर) की याचिका पर सुनाया है। इसमें मांग की गई है कि चूंकि यह योजना अपारदर्शी है और चंदे में भ्रष्टाचार का खेल पहले की तरह जारी है, लिहाजा इस व्यवस्था को खत्म किया जाए। सर्वोच्च अदालत ने स्पष्ट कर दिया है कि वह चुनावी बांड को लेकर आयकर, चुनाव और बैंकिंग कानूनों में किए गए बदलावों की विस्तृत जांच जरूर करेगा।

चुनावी बांड योजना दो जनवरी 2018 को अधिसूचित की गई थी। इसके मुताबिक कोई भी भारतीय नागरिक या भारत में स्थापित संस्था चुनावी बांड खरीद सकती है। तथ्य यह भी कि जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा 29 ए के तहत पंजीकृत पार्टियां और पिछले आम चुनाव या विधानसभा चुनाव में कम से कम एक फीसद वोट हासिल करने वाली पार्टियां ही चुनावी बांड के जरिए पैसे ले सकती हैं। शर्त यह भी है कि पात्र राजनीतिक पार्टियां इस चुनावी बांड को सिर्फ अधिकृत बैंक में ही भुना सकती हैं। यहां जानना आवश्यक है कि चुनावी बांड की वैधता जारी होने के पंद्रह दिन तक ही रहती है और इसे जारी करने एवं भुनाने के लिए भारतीय स्टेट बैंक को अधिकृत किया गया है। अब देखना दिलचस्प होगा कि सर्वोच्च अदालत चुनावी बांड की व्यवस्था पर अपना अंतिम निर्णय क्या सुनाती है। लेकिन एक बात पूरी तरह साफ है कि यह व्यवस्था पहले की तरह ही अपारदर्शी है, इसलिए इस पर सवाल उठ रहे हैं। याद होगा जब 2017-18 के बजट में चुनावी बांड योजना की घोषणा की गई थी तब कहा गया था कि अब राजनीतिक दल दो हजार रुपए से अधिक का चंदा नगद में नहीं ले सकेंगे। उन्हें चेक के जरिए बांड खरीदना होगा और इस तरह यह चंदा राजनीतिक दलों के पंजीकृत खाते में चला जाएगा। वित्त मंत्री ने यह भी कहा था कि इस पहल से राजनीतिक दलों के खाते पर नजर रखने में मदद मिलेगी और आयकर विभाग भी उनके खातों की जांच आसानी से कर सकेगा। लेकिन ऐसा होता दिख नहीं रहा है। जाहिर है, चुनावी चंदे के खेल में अभी भी कालेधन का इस्तेमाल जारी है।

चुनावी बांड व्यवस्था से पहले राजनीतिक दल कुल चंदे की बीस फीसद राशि देने वाले दाताओं के नामों को उजागर करते थे। लेकिन अस्सी फीसद चंदा जो बीस-बीस हजार रुपए के कूपन बेच कर जुटाते थे, उन नामों का खुलासा नहीं करते थे। इसका कोई कानूनी प्रावधान भी नहीं था। लेकिन नए प्रावधानों के मुताबिक उनके लिए दो हजार रुपए से अधिक चंदा देने वालों के नामों का खुलासा करना अनिवार्य कर दिया गया है। यह माना गया गया था कि चुनावी बांड व्यवस्था से राजनीतिक दल आयकर विभाग की नजरों में रहेंगे। लेकिन ऐसा प्रतीत हो रहा है कि चुनावी चंदा देने और लेने वाले दोनों ही आयकर विभाग की नजरों से बचे रहना चाहते हैं। ऐसा इसलिए कि आयकर की धारा 13ए में राजनीतिक दलों पर अंकुश लगाने के प्रावधान हैं। इसके तहत उन्हें चंदे से संबंधित बही-खाते एवं अन्य दस्तावेज रखने पड़ते हैं। लेकिन मजेदार बात यह है कि जनवरी 2018 में चुनावी बांडों के जरिए चंदा देने की अधिसूचना जारी होने के बाद से लेकर अब तक आयकर विभाग चंदे के रहस्यमय खेल को उजागर नहीं कर पाया है।

ऐसा माना गया था कि चुनावी बांड व्यवस्था लागू होने से सर्वाधिक असर उन क्षेत्रीय दलों पर पड़ता जो चुनावी चंदा तो इकट्ठा करते हैं, लेकिन चुनाव नहीं लड़ते हैं और न ही बताते हैं कि कितना चंदा मिला। लेकिन ऐसे दलों पर कोई कार्रवाई नहीं हो रही। पिछले दस सालों में सभी राजनीतिक दलों को

11367.34 करोड़ रुपए का चंदा मिला है जिसमें से 7832.98 करोड़ रुपए बेनामी स्रोत से मिले हैं। यानी 1835.63 करोड़ रुपए का चंदा ही मात्र ज्ञात है।

चुनाव आयोग ने तय कर रखा है कि कोई भी उम्मीदवार निर्धारित सीमा से अधिक खर्च नहीं कर सकता। लेकिन देखा जाता है कि उम्मीदवार चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित धनराशि से कई गुना अधिक धन खर्च करते हैं। जबकि जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 77 (1) में स्पष्ट उल्लेख है कि सभी उम्मीदवारों के लिए चुनाव खर्च का हिसाब रखना अनिवार्य है और धारा 77 (3) के मुताबिक खर्च निर्धारित राशि से अधिक नहीं होना चाहिए। गौरतलब है कि 1975 में सर्वोच्च न्यायालय ने लोकसभा सदस्य अमरनाथ चावला की सदस्यता इसी आधार पर समाप्त कर दी थी कि उन्होंने निर्धारित सीमा से अधिक खर्च किया था। इस मामले में अदालत ने यह व्यवस्था भी दी थी कि अत्यधिक संसाधन की उपलब्धता किसी उम्मीदवार को दूसरों के मुकाबले अनुचित लाभ प्रदान करती है। चुनाव में चंदे की भूमिका पर भी सर्वोच्च न्यायालय कठोर टिप्पणी कर चुका है कि चुनाव के पहले दिया गया चंदा चुनाव के बाद वायदे के रूप में कार्य करेगा जिससे आम आदमी के हितों पर कुठाराघात होगा। इसका असर विधायी प्रक्रियाओं पर उतना नहीं होगा जितना कि कानून और प्रशासनिक एवं नीतिगत निर्णयों को लागू करने पर।

चुनाव आयोग और न्यायालय द्वारा कई बार ताकीद किए जाने के बाद भी राजनीतिक दल चुनावी चंदे के मामले में यथास्थिति बनाए रखने के पक्षधर हैं। बजट में कड़े प्रावधान लाए जाने के बाद माना जा रहा था कि राजनीतिक दलों के लिए चुनावी चंदे के स्रोत को छिपाना आसान नहीं होगा। चुनाव सुधार की दिशा में यह एक बड़ी और कारगर पहल थी, इससे लोगों की उम्मीद बढ़ी थी। लेकिन यह उम्मीद फलीभूत होती दिख नहीं रही है। अभी तक जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 77 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था जो राजनीतिक दलों को सही खाता रखने को मजबूर करे। लेकिन अब नए प्रावधानों के मुताबिक राजनीतिक दलों को हर साल अपनी रिटर्न भरनी होगी। लेकिन यह स्थिति तब होगी जब चुनावी बांड की खरीद पारदर्शिता के दायरे में होगी।

सरकार राजनीतिक फंडिंग में पारदर्शिता के लिए ठोस कानून बनाने के साथ-साथ राज्यपोषित कोष भी बनाए, ताकि राजनीतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिए बेनामी चंदा उगाही की जरूरत ही न पड़े। 1998 में तत्कालीन गृहमंत्री के नेतृत्ववाली एक संसदीय समिति ने राज्यपोषित कोष से चुनाव खर्च वहन करने की सिफारिश की थी। लेकिन सियासी जमात उसके लिए तैयार नहीं हुई। कुछ दल तो इस तरह के सुझाव को सिरे से खारिज कर उससे उत्पन होने वाली समस्याओं को प्रेत की भांति खड़ा करने से भी नहीं चूके। दरअसल, उनकी मंशा और नीयत में खोट है। वे नहीं चाहते हैं कि चुनाव में सुधार हो। और वे चाहेंगे भी क्यों? जब उनके चुनावी खर्च को कॉरपोरेट घराने वहन करने को तैयार हैं और बदले में राजनीतिक दल उनका हित पोषण करने को तैयार हैं तो फिर उनके लिए चुनाव सुधार की जरूरत ही क्या है?

विकास के विद्रूप

धर्मेंद्र प्रताप सिंह

आज के सर्व-सुविधा और संपन्नता में शुमार अधिकतर गांव कुछ समय पहले अत्यंत पिछड़े हुए माने जाते थे और ऐसी जगह रहने वाले ग्रामीण आधुनिक सुविधाओं के अभाव में हीनता के शिकार थे। ऐसे ही एक गांव का मैं रहने वाला हूं जहां आज से दस वर्ष पहले न तो बिजली थी और न सड़क की सुविधा। पानी का खारा होना समस्या और अधिक बढ़ा देता था। गांव के किनारे से होकर बहने वाला मट्टन नाला, जिसे बरसाती नाला भी कह सकते हैं, गांव की सीमा निर्धारित करता था। इसके पिछड़े होने का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था नाले की वजह से गांव का संपर्क अन्य स्थलों से कट जाना। बरसात के समय में मट्टन नाला विकराल रूप धारण कर लेता और करीब दो किलोमीटर की दूरी के निकटतम बाजार से संपर्क टूट जाता था। हमें बाजार, पोस्ट ऑफिस, बैंक, स्कूल आदि नाला पार करके ही जाना पड़ता था। बरसात के दिनों में पानी बढ़ जाने से आवागमन में बहुत असुविधा होती थी।

बिजली के आने पर लोगों ने अपने आंगन में ही पानी की व्यवस्था कर ली। लेकिन मैं जब भी इसके बारे में सोचता हूं तो मेरा मन वेदना से भर जाता है। अत्याधुनिक मशीनों से निकलने वाले पानी की आज उस गांव में कोई कीमत नहीं, जिसके लिए लोग कुछ समय पहले तरसते थे। जेट पंप के जरिए भूगर्भ से आसानी से निकलने वाला पानी सभी के घरों के सामने के गड्ढे में भरा दिख जाता है। बिजली ने लोगों को पानी बर्बाद करना सिखा दिया है। इसके साथ ही गांव के अधिकतर घरों में रात भर अनगिनत बल्ब जलते हुए दिखाई देते हैं, चाहे उनकी उपयोगिता हो या न हो।

दुनिया मेरे आगे

विकास जरूरी है। लेकिन इसने प्रकृति को कई स्तरों पर बहुत क्षति पहुंचाई है। ग्यारह हजार वोल्ट की लाइन होने के कारण बिजली का ट्रांसफार्मर गांव के बाहर लगा है। इससे लोग आसपास के पेड़ों के सहारे तार खींच कर घरों में बिजली ले जाते हैं। जिन पेड़ों से होकर ये बिजली के केबल गुजरे हैं, उन पेड़ों का हश्र व्यथित करने वाला है। गांव के सबसे पुराने जिस पीपल-वृक्ष की डालों से होकर केबल गुजरती थी, वह आज पांच वर्ष बाद सूख कर ठूंठ मात्र रह गया है। इसके साथ ही एक बड़ा नीम का पेड़ सूख चुका है। हो सकता था कि वह लंबे समय तक दरवाजे की शोभा बढ़ाता और हम उसके नीचे बैठते और ताश खेलते, सावन के झूले झूलते।

बिजली आने के बाद गांव में एक अन्य विकट समस्या पैदा होती दिखाई दे रही है। जेट पंप लग जाने से पानी के अन्य स्रोत सूख चुके हैं। कुआं प्रयोग में न आने के कारण उसका पानी बदबू करने लगा है और हैंडपाइप खराब हो चुके हैं। विकास के सारे आयाम तय करने के बावजूद हमें यह बात याद रखनी चाहिए है कि वह एक गांव है और उत्तर प्रदेश का गांव। बिजली तो आती-जाती रहती है। लेकिन कभी-कभी स्थिति भयावह हो जाती है। अक्सर बरसात में खंभे गिर जाने से लगभग महीनों तक बिजली नहीं आती। गरमियों में ट्रांसफार्मर जल जाना आम बात है।

कभी आप सोच सकते हैं कि ऐसे समय में उस गांव को पानी कहां से मिलता है। उस गांव में मनुष्य ही नहीं हैं, गाय, भैंस, बकरी तथा अन्य जानवर भी हैं। प्राकृतिक स्रोतों के नष्ट होने पर अगर तीन दिन के लिए भी बिजली चली जाती है तो पूरा गांव पानी के लिए त्राहिमाम कर उठता है। सुविधा संपन्न लोग जेनरेटर की व्यवस्था करके धरती की छाती से पानी निकालते हैं, जबकि आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति उन सुविधा-संपन्न लोगों पर अश्रित रहते हैं। उनसे मन-मुटाव होने पर उन्हें पानी के लिए काफी दूर जाना पड़ता है। जेनरेटर एक-एक घंटे में लगभग सौ रुपए का डीजल पी जाता है, जो गरीबों के बस का तो नहीं ही है। पैसों के अभाव में अपना जेनरेटर तो वे खरीदने से रहे। हां, कुछेक लोगों को व्यवहार पर बाजार से कुछ दिनों के लिए मिल जाता है। यों मवेशी नाले के पानी पर ही निर्भर रहते हैं लेकिन गरमियों में यानी मार्च से जून माह तक नाले में भी पानी नहीं बचता। ऐसे में पानी के बगैर उनकी क्या दशा होती है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

कहने का आशय यह है कि अब वह समय आ गया है, जब हमें विचार करना होगा कि विकास चाहिए, लेकिन किस कीमत पर? क्या विकास की यह कीमत चुकाने के लिए हम तैयार हैं? इस बाजारवादी दौर में मनुष्य जिसे भी विकास मान रहा है, उसमें अन्य जीव-जन्तुओं और हमारी प्रकृति का क्या होगा! विकास अगर समाज की बराबरी को लक्षित नहीं होगा, अलग-अलग समूहों-समुदायों को उसमें जगह नहीं मिलेगी, प्रकृति के अन्य सभी पक्षों के बीच संतुलित नहीं होगा तो वह विकास आगे चल कर अराजकता का वाहक भी बन सकता है।

वोट का सच

सुबह का भूला शाम को घर लौट आए तो उसे भूला नहीं कहते! पांच साल तक राममंदिर, समान नागरिक संहिता, धारा 370 जैसे अपने मूल मुद्दों को छोड़ कर तीन तलाक, विदेश से कालाधन लाना, नोटबंदी, दो करोड़ सालाना रोजगार वगैरह आजमाते रहे। चुनाव आते-आते नौबत यह आ गई कि पाकिस्तान के नाम पर वोट मांगने पर मजबूर होना पड़ा। फिर भी आश्वस्त नहीं हो सके तो हिंदू-मुसलमान करना ही पड़ गया। भाजपा को एक तिहाई वोट जिन मुद्दों पर मिले थे, उनकी अनदेखी करने लगी और जहां से कुछ हासिल नहीं होना है, वहां हाथ-पैर मार रही थी! बावजूद इसके ज्यादा देर नहीं हुई, जनता का मूड चुनाव आते-आते बखूबी भांप लिया और चुनाव से ऐन पहले असल मुद्दों पर वापसी करते हुए मजबूती से माहौल बनाया। अब पार्टी सही दिशा में आगे बढ़ रही है! गांव-गांव तक संदेश पहुंच चुका है कि मुसलमानों की हवा टाइट है। साक्षी चूक रहे थे, योगी अकेले पड़ रहे थे तो साध्वी प्रज्ञा ठाकुर को भी मोर्चे पर सबका साथ-सबका विकास भूल कर हिंदुत्व का परचम बुलंद करने के लिए उतार दिया गया है!

पांच साल बाद संकल्प पत्र में 370, 35 ए सब फिर से याद आए और अबकी बार फिर असल मुद्दों पर सरकार का संकल्प दोहराया गया। हर पार्टी की अपनी एक छवि है देश में, जैसे कांग्रेस की छवि मुसलिम तुष्टिकरण की है, वैसे ही भाजपा की हिंदूवादी की है। छवि यानी इमेज का दायरा तोड़ना आसान नहीं होता। अमिताभ जैसे महानायक को भी 'एंग्री यंगमैन' की छवि बनाने और फिर तोड़ने में लंबा अरसा लगा था, सलमान को भी 'मैचोमैन' की छवि तोड़ कर ट्यूबलाइट में आना महंगा पड़ गया था। वैसे ही भाजपा को अपनी हिंदूवादी छवि से बाहर निकल कर अखिल भारतीय सर्वधर्म समभाव पार्टी की छवि बनाने की कोशिश भारी पड़ सकती थी। इसमें शक नहीं कि मौजूदा प्रधानमंत्री की लोकप्रियता किसी भी दूसरे नेता से कई गुना ज्यादा है, लेकिन मुसलमानों में उनकी स्वीकार्यता नहीं है, यह भी जमीनी सच्चाई है। कोशिशें उन्होंने बहुत कीं, लेकिन दशकों से पार्टी की जो छवि बनी, उसे एकदम से बदल पाना मोदी हैं तो भी मुमकिन नहीं!

अमित शाह संगठन चलाते हैं, जमीनी कार्यकर्ताओं के बीच रहते हैं, उन्हें सब पता है। यों ही नहीं उन्होंने मुसलमानों को छोड़ कर बाकी सबको एनआरसी से बचाने का बयान दिया। योगी ध्रुवीकरण की राजनीति का जमीनी महत्त्व समझते हैं। यों ही नहीं उन्होंने हमारे लिए बजरंग बली काफी हैं, का बयान दिया था। मेनका दशकों से राजनीति में हैं, यों ही नहीं उन्होंने मुसलमानों के बिना भी जीत का बयान दिया। कोई कितना भी गंगा-जमुनी तहजीब, हिंदू-मुसलिम-सिख-ईसाई भाई-भाई की बात कर ले, कड़वी लेकिन सच्ची बात है कि एक-दूसरे के प्रति नफरत हमारी स्वाभाविक पहचान है। इस नफरत पर भाईचारे का मुखौटा वसुधैव कुटुंबकम की किताबी परंपरा है, जिसे सुनकर हम तालियां पीटते हैं और फिर किसी आजम-ओवैसी के भाषण में मुसलमानों और किसी योगी-प्रज्ञा के भाषण में हिंदुओं को वोट देने की अपील पर भी ताली पीट आते हैं।

जो सच है, वही सच है, जिससे वोट मिलना है, वही सही है, वही सच है! इस सच के साथ जो रहेगा, वही वोट पाएगा, जो भटकेगा वह सिर्फ वोट का दावा करता रह जाएगा! यह सबक है उनके लिए भी जो चुनाव जीतने के बाद 'कोर वोटर्स' के मन की बात नहीं करते और उनके लिए भी जो चुनाव के वक्त ही बहुसंख्यकों की मन की बात समझने का सबूत देने के लिए मंदिर-मंदिर घूमने लगते हैं!

● *मो. ताबिश, जामिया मिल्लिया, नई दिल्ली*

दुष्प्रचार से दूर

इन दिनों चुनाव प्रचार में तमाम पार्टियां एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रही हैं। नेता अपने वोट बैंक के लिए एक-दूसरे को नीचा दिखा रहे हैं, यहां तक कि अभद्र भाषा का प्रयोग भी कर रहे हैं। वोट बटोरने के लिए जाति और धर्म का सहारा लिया जा रहा है। कोई किसी को चोर बोल रहा है, तो कोई बईमान। अपने कार्यों को अच्छा बताकर, दूसरों में कमियां निकाल कर और बड़े-बड़े वादे करके जनता को लुभाने की कोशिश की जा रही है। जनता को इस तरह के दुष्प्रचार से बचना चाहिए और अपने विवेक से मत का उपयोग करके सही उम्मीदवार को चुनना चाहिए।

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

● *संजू कुमार, भादरा, हनुमानगढ़, राजस्थान*

ईवीएम पर ठीकरा

इक्कीस विपक्षी दलों ने दिल्ली में 'लोकतंत्र बचाओ' बैनर तले प्रेस कॉन्फ्रेंस कर ईवीएम को लेकर गंभीर आरोप लगाए हैं। इन दलों के नेताओं ने चुनाव आयोग को ईवीएम की कथित गड़बड़ी के विरोध में ज्ञापन भी दिया। मजे की बात है कि ईवीएम पर संदेह करने वाले नेताओं में दिल्ली के मुख्यमंत्री भी हैं, जिन्हें इन्हीं मशीनों ने 70 में से 67 सीटों पर छप्परफाड़ बहुमत दिला कर मुख्यमंत्री बनवा दिया था। तब ये मशीनें सही थीं! कौन नहीं जानता कि पश्चिम बंगाल और आंध्र के मुख्यमंत्री भी इन्हीं मशीनों द्वारा दर्ज वोटों से जीते थे! कांग्रेस भी इन्हीं मशीनों के वोटों से जीत कर पंजाब में सरकार बना चुकी है। हाल ही में जब मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में इन्हीं ईवीएम ने मुख्य विपक्षी दल को जीत दिलाई तो किसी भी विपक्षी नेता ने यह नहीं कहा था कि ईवीएम के साथ छेड़छाड़ हुई है। जीत-हार मशीनें नहीं, मतदाताओं की साझी सोच निर्धारित करती है। यह क्या बात हुई कि जीते तो हमारी हवा थी, हारे तो ईवीएम में लोचा था!

● *शिबन कृष्ण रैणा, अरावली विहार, अलवर*

दूषित राजनीति

आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के बढ़ते मामले, मतदाताओं को बांटे जाने वाले पैसे की बरामदगी का कोई ओर-छोर न दिखना और विरोधियों को लेकर दिए जाने वाले बेजा बयानों का सिलसिला बताता है कि हमारी चुनाव प्रक्रिया ही नहीं, समूची राजनीति भी बुरी तरह दूषित हो चुकी है। इतने बड़े देश में जहां राजनीतिक दलों की भारी भीड़ है, वहां चुनाव प्रचार के दौरान आरोप-प्रत्यारोप का जोर पकड़ लेना स्वाभाविक है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि नेतागण गाली-गलौज करने अथवा मतदाताओं को धमकाने को अपना अधिकार समझने लगें। यह स्थिति बताती है कि भारत दुनिया का बड़ा लोकतंत्र भले हो, लेकिन उसे बेहतर लोकतंत्र का लक्ष्य हासिल करने के लिए अभी एक लंबा सफर तय करना है। समय के साथ स्थितियां सुधरने की अपेक्षा तभी पूरी हो सकती है जब राजनीतिक दल येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीतने की अपनी प्रवृत्ति का परित्याग करते हुए दिखेंगे।

● *हेमंत कुमार, गोराडीह, भागलपुर, बिहार*